Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2019: 6.251, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFERRED JOURNAL, JUNE-JULY, 2020, VOL- 8/40

संत कबीरदास का समाजशास्त्र : एक सिंहावलोकन

अर्चना कुमारी

शोध छात्रा , समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Abstract

प्रस्तुत शोध–आलेख संत कबीरदास की वैचारिकी पर आधारित है, जिसमें कबीर के समाजशास्त्र को खोजने का प्रयास किया गया है। कबीर का समाजशास्त्र कर्म, पुरुषार्थ एवं वसुधैव कुटुम्बकम के रूप में मानवता का एक नया पाठ पढ़ाता है। वास्तव में कबीर की वैचारिकी जहाँ एक ओर धर्म, जाति, प्रजाति एवं सम्प्रदायगत भेद को नकारती है, तो वहीं दूसरी तरफ मानव और मानव के बीच प्रेम, बन्धुत्व एवं भाईचारे का आदर्श भी स्थापित करती है।

प्रमुख शब्द *: विमर्श, कहावतें, मानवता का समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र, वसुधैव कटुम्बकम, धर्म, कर्म, पुरुषार्थ, जाति, प्रजाति, सम्प्रदायगत, प्रेम, बन्धुत्व, भाईचारा।*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

परिचय एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

समाजशास्त्र का अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य समाज के अध्ययन से सम्बन्धित है। अर्थात् वह शास्त्र या विज्ञान जो समाज का अध्ययन करता है उसे समाजशास्त्र कहते हैं। समाज वैज्ञानिक वार्ड समाजशास्त्र को इसी तरह परिभाषित करता है। समाज विज्ञान में अद्यतन समाज वैज्ञानिकों को हम देखें तो लगभग सभी ने अलग–अलग चश्में से घटनाओं को देखने का प्रयास किया है। यहाँ एक बात जरूर दृष्टिगत है कि ऑगस्ट कॉम्ट ने समाज को देखने–समझने और अध्ययन करने क लिए समाजशास्त्र के रूप में एक नवीन विधा का नाम दिया। तो क्या उससे पहले समाज एवं सामाजिक घटनाओं को देखने, समझने एवं अध्ययन हेतु किसी शास्त्र या विज्ञान का अस्तित्व था? यदि था तो क्या?

इस पक्ष को देखते हुए एक प्रश्न यहाँ जरूर उठता है कि क्या ऑगस्ट कॉम्ट से पहले समाज को देखने एवं अध्ययन करने के लिए जो शास्त्र अथवा विज्ञान था, वह लोकोक्तियों के माध्यम से, कहावतों के माध्यम से, मुहावरों के माध्यम से, पदों के माध्यम से, कविताओं के माध्यम से घटनाओं पर विमर्श को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित करता था। इसी शास्त्र के माध्यम से हम अपनी जीवन संस्कृति

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

को अद्यतन बचा पाये हैं? इसी क्रम में हम संत कबीरदास को भी देखते हैं, जिन्होंने लिपि के अभाव में भी जीवन, समाज एवं इससे जुड़ी घटनाओं के वास्तविक स्वरूप को समझा। इन समस्याओं के समाधान हेतु कबीरदास ने लोकजन के बीच अपने पदों के माध्यम से श्रम रूपी साधना को एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। वास्तव में कबीर जान–अनजाने में 'धर्म का समाजशास्त्र' के क्षेत्र में समाजशास्त्र का एक नया स्वरुप स्थापित किया, जिसे **'मानवता का समाजशास्त्र'** नाम दिया जा सकता है।

शोध–पत्र का उद्देश्य

1. प्रस्तुत आलेख में कबीर की वैचारिकी के अन्तर्गत समाजशास्त्र को ढूँढने का प्रयास किया गया है।
2. कबीर का समाजशास्त्र वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है। इस पक्ष को प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।
3. कबीर की वैचारिकी तोड़ने की बजाय जोड़ने पर बल देती है। इस पक्ष को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।
4. कबीर की वैचारिकी धर्म, कर्म एवं मोक्ष का नया संदर्श प्रस्तुत करती है।

कबीर का समाजशास्त्र

यदि हम कबीर के समाजशास्त्र की बात करें तो कबीर का समाजशास्त्र कर्म, पुरुषार्थ एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में मानवता का पाठ पढ़ाता है, तो वहीं दूसरी तरफ इस धरा पर व्याप्त सभी प्रकार के भेद को नकारता है। कबीर का समाजशास्त्र, धर्म, जाति, प्रजाति एवं सम्प्रदायगत भेद को पूरी तरह से नकारता है, मानव, मानव के बीच प्रेम, बन्धुत्व एवं भाईचारे की बात करता है।

कबीर एक महान समाज वैज्ञानिक थे, जिन्होंने आज से 600 वर्ष पूर्व सामाजिक भेदभाव से मानव के द्वारा मानव पर होने वाले अत्याचार एवं शोषण को सिरे से खारिज किया और इस तरह के शत्रुओं पर अपने ज्ञानरूपी हथियार से ललकारते हुए प्रहार भी किया। यदि हम उनकी समाज वैज्ञानिकता क पक्ष में देखें तो इस संदर्भ में उर्वशी सूरती कहती हैं कि :

> *"उन्होंने समाज–जीवन की शुद्धि के लिए जातिभेद और संकीर्ण सांप्रदायिकता का बहिष्कार आवश्यक माना और सार्वभौम मानव–प्रेम को 'धर्म' का सच्चा स्वरूप बताया। उनका प्रश्न था कि मनुष्य धर्म के नाम पर मनमानी क्यों करता है? यदि मनुष्य धर्म को समग्रता में ग्रहण करता तो समाज में विषमता न फैलती। धर्म से छेड–छाड कर उसके स्वरूप को विकृत करने वालों में शाक्त और ब्राह्मण पुरोहित–पंडितों को सबसे अधिक दोषी मानते थे और उनसे बचकर रहने में ही अपनी और समाज की सुरक्षा देखते थे।" (उर्वशी सूरती–2015: 54)*

उर्वशी सुरती का यह तथ्य कबीर को एक उच्चकोटि के समाज वैज्ञानिक एवं समाजशास्त्री के रूप में स्थापित करता है। कबीर का समाजशास्त्र जातिगत भेद, मूर्तिपूजा को भी स्वीकार नहीं करता है, बल्कि उनका समाजशास्त्र स्वीकार करता है, प्रेम, समर्पण एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की वैचारिकी को। वे समाज के बीच जाति–पांति का भेद छुआछूत, खानपान एवं व्यवहारों में भेद को तो नकारते ही हैं, वहीं मुसलमानों के बीच व्याप्त धार्मिक कर्मकाण्डों एवं अंधविश्वासों पर भी करारा प्रहार किया। कबीर ने हिन्दू, मुसलमान दोनों के धार्मिक कर्मकाण्डों एवं आडम्बरों का पुरजोर विरोध किया।

कबीर के वास्तविक समाजशास्त्र को उर्वशी सूरती के इस गद्य में देखा जा सकता है :

> *"आज कबीर स्मरणीय इसलिए है कि परंपराओं के उचित संचयन तथा परिस्थितियों की प्रेरणा में उन्होंने ऐसे विश्व धर्म की स्थापना की जो जनजीवन की व्यावहारिकता में उतर सके और अन्य धर्मों के प्रसार में समानांतर बहते हुए अपना रूप सुरक्षित रख सके। वह रूप सहज और स्वाभाविक हो तथा अपनी विचारधारा में सत्य से इतना प्रखर हो कि विविध वर्ग और विचार वाले व्यक्ति अधिक से अधिक संख्या में उसे स्वीकार कर सकें और अपने जीवन का अंग बना सके।"(उर्वशी सूरती–2015: 1)*

उपुर्यक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर ने अपना पूरा जीवन एक क्रिया समाजशास्त्रो के रूप में व्यतीत किया। वास्तव में कबीर का समाजशास्त्र लोकजन के बीच श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित करता है। लोगों को जीवन का असली मर्म समझाता है। कबीर का समाजशास्त्र आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर खड़े मानव समाज को मानवता का पाठ पढ़ाने में भी सक्षम दृष्टिगोचर होता है।

कबीर ने कर्म की वैचारिकी सिद्धान्त की बजाय व्यवहार में अपनाया। कबीर कभी भी अपने काम को छोटा नहीं समझा। कबीर ने कर्म को धर्म के रूप में स्वीकार किया। कबीर का मानना है कि बिना श्रम के जीवन अपूर्ण हैं। सच्चा कर्म आत्मबल को बोध कराता है। इसीलिए कहा जाता है कि संत कबीरदास एक सच्चे साधक एवं कर्मयोगी थे। कर्म को ही जीवन का मूल आधार बनाया। तत्कालीन संरचना में कबीर ने आम लोकजन के बीच श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित कर उन्हें भिखारी जीवन धारण करने से बचाया।

कबीर का मानना है कि– ''पूरी ईमानदारी एवं श्रद्धा से कर्म को साधना का आधार मानकर किया गया कार्य हमेशा अच्छा ही फलदायक होता है। वह कर्म निष्फल नहीं होता है। जहाँ मेहनत, मजदूरी करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता है, वहीं संत कबीरदास ने उनके श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित कर उनकी सामाजिक प्रस्थिति को पुनर्स्थापित किया। तत्कालीन समय में पोथी, माला, जप,

तप एवं पूजा आदि जैसी वैचारिकी को ही श्रम के प्रभावी रूप में देखा जाता था, जबकि इसके विपरीत कार्य करने वाले लोकजन को दोयम दर्जा प्राप्त था। कर्म के इस भेदरूपी वैचारिकी को संत कबीरदास ने अपनी वाणी से तोड़ने का प्रयास किया और कहा कि– *''वास्तविक श्रम के बिना संसार में सुख, शांति एवं आनन्द के सच्चे स्वरुप की प्राप्ति सम्भव नहीं है।''*

भारत की 14वीं, 15वीं शताब्दी की संरचना को हम देखें तो पूरी की पूरी संरचना धर्म की भित्ति पर खड़ी थी। धर्म से परे किसी भी चश्में से घटना को देखना वर्जित एवं निषेध था। जाति आधारित भेद चरमोत्कर्ष पर थे। इन सब समस्याओं के विरोध में सवाल खड़ा करना पूर्णतः प्रतिबन्धित था। कबीर इतने प्रतिबन्धों एवं निषेधों के बावजूद भी अपनी वाणी के माध्यम से पहली बार इन समस्याओं के विरोध में सवाल खड़ा किया। परिणामस्वरुप समाज में एक वैचारिक क्रान्ति का उदय हुआ। कबीरदास का यह दोहा तत्कालीन जाति प्रथा पर जोरदार प्रहार करता है :

"एक बूंद एक मलमूतर एक चाम ही गुदा।
एक जाति थै सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा।।"

अपनी उपरोक्त पद में कबीर कहते हैं कि इस धरा का समस्त मानव एक बूंद अर्थात् एक ही ईश्वर की संतान हैं, जिसके मल–मूत्र, चर्म व गुदा समान है, इनमें कोई अन्तर नहीं है। सभी एक ही जाति अर्थात् मानव योनि की उपज है। फिर इस धरा पर मानव को मानव के बीच ब्राह्मण और शूद्र के बीच भेद करने का अधिकार कैसे?

"कबीर गुर गुरवा मिल्या रलि गया आंटे लूण।
जाति–पांति कुल सब मिट नाँव धरोगे कूण।।"

आगे पुनः कबीर कहते हैं कि मानव को कभी भी जातिगत अभिमान नहीं करना चाहिए। जातिगत अभिमान वस्तुतः लोकजन को पतन की ही ओर ले जाता है। जातिगत अभिमान के विरोध में वे कहते हैं कि :

''उंचे कुल क्या जनमियाँ, जे करनी उंच न होई।
सुवर्ण कलस सुरै भरया साधू विद्या सोई।।''

उपर्युक्त दोहे के भावार्थ को हम देखें तो कबीर का यह दोहा कल भी समाज के लिए आदर्श था और आज भी आदर्श है। ऊँचे कुल में जन्म लेना बड़ा नहीं है, बल्कि ऊँचें कर्म करना बड़ा है।

भारत में कबीर कालीन संरचना को हम देखें तो पूरी की पूरी संरचना धर्म की भित्ति पर खड़ी थी। अर्थात् समस्त घटनाओं को एक ही चश्में से देखा जाता था। ऑगस्ट कॉम्ट इस स्थिति को मानव सभ्यता की धार्मिक अवस्था के रूप में देखता है। धार्मिक कर्मकाण्डों का प्रभाव चरमोत्कर्ष पर था। यह स्थिति सिर्फ हिन्दू धर्मावलम्बियों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि मुस्लिम धर्मावलम्बी भी इन्हीं धार्मिक

पाखण्डों को जीवन को गति दे रहे थे। इस तथ्य की पुष्टि के संदभ में संत विवेकदास आचार्य कहते हैं कि :

> *"कबीर साहब ने देखा कि दोनों ही धर्मों के लोग गलत रास्ते पर चल रहे हैं। हिंदू और मुसलमान दोनों अपने–अपने धर्म की बड़ाई करते हैं, लेकिन दोनों की राह गलत है। उन्होंने दोनों धर्म–मजहबों के खिलाफ आवाज उठायी। दोनों अपने–अपने मार्ग से च्युत हो चुके हैं। हिंदू व्रत और एकादशी तो करते हैं, किंतु मन को नहीं साधते। दिन–भर तो वे भूखे रहते हैं शाम होते दूध, सिंघोरा, सेती और मेवा–मिष्ठानों का भोग लगाते हैं तथा देवी–देवताओं के नाम पर हिंसा करते हैं। भक्ष और अभक्ष खाते हैं और मन को मलिन बना लेते हैं–**हिंदू बरत एकादसी साधे, दूध सिंघौरा सेती। अन्न को त्यागैं मन को ना हटके, पारन करैं सगौती।।**" (संत आचार्य विवेकदास 2011: 12)*
>
> *"मुसलमान दिन–भर तो रोजा रहते हैं; मगर शाम होते ही गाय, भैंसा और मुर्गा–मुर्गी काटने लगते हैं। एक तरफ तो अल्लाह के नाम पर हिंसा करके खुशी मनाते हैं और दूसरी तरफ बंदगी करते हैं। यह कैसी बंदगी है–दिन को राहत है रोजा, राति हनत हैं गाय। यहाँ खून वे बंदगी, क्योंकर खुसी खोदाय।।"(संत आचार्य विवेकदास 2011: 31)*

यहाँ कबीर ने अल्लाह और राम को कभी भी अलग–अलग रूप में स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि अल्लाह और राम दोनों एक ही परमात्मा के अलग–अलग नाम हैं, और उन्हीं दोनों की सत्ता से मानव का जीवन गतिमान है। यदि उसकी दया और कृपा नहीं होगी तो हे मानव! तुम कुछ भी कर लो, तुम्हें शांति नहीं मिलेगी। इस तरह हम देखें तो कबीर ने तत्कालीन समय में प्रचलित धार्मिक कर्मकाण्डों पर कड़ा प्रहार किया। मन्दिर–मस्जिद दोनों पर प्रहार किया। उनका मानना है कि यदि व्यक्ति बुरा कार्य करता है तो कितना ताबीज रख ले, हाथ पैर धोकर माला पहन ले, जप कर ले, मन्दिर, मस्जिद में पूजा, नमाज कर ले, इससे उसका कोई लाभ होने वाला नहीं है।

भारत में राम को विविध स्वरुपो में देखा जा सकता है। इसी धरा पर एक धारा उन्हें साकार रूप में देखती है तो दूसरी धारा उन्हें निराकार रूप में स्वीकार करती है, परन्तु कबीर का 'राम' निराकार स्वरुप धारण करता है। वह पूरी तरह से निराकारी है। घट–घट में विद्यमान है, जिसे वे आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं।

कबीर के 'राम' के संदर्भ में संत विवेकदास आचार्य कहते हैं कि :

> *''कबीर साहब जिस 'राम' को अपना ईश्वर मानते हैं। वह राम दशरथ का बेटा*

राजा राम नहीं है। कबीर साहब के राम जन्म और मरण से परे हैं। वह राम आत्मा है, जिसको कबीर साहब ने बार–बार 'राम' कहा है। वह आत्मा अमर है, अजर है, अविनाशी है, अगम है, अगोचर है, अकथनीय और अपरम्पार है। उसका थाह अब तक कोई नहीं लगा सका है। कबीर साहब के 'राम' कभी अवतार नहीं लेते हैं। वह आने और जाने से भी परे हैं। जो और और जाते हैं, वे नाशवान होते हैं। कबीर साहब के राम तो अविनाशी हैं।'' (संत आचार्य विवेकदास 2013: 37)

यहाँ हम संत विवेकदास द्वारा प्रदत्त तथ्यों का विश्लेषण करें तो कबीर का राम जन्म एवं मरण से भी ऊपर है। वास्तव में राम आत्मा है। यदि कबीर का राम आत्मा है तो आत्मा तो सभी में विद्यमान होती है। इस नाते आत्मा के रूप में ईश्वर सभी मानव में विराजते हैं। आत्मा नश्वर भी है। अतएव ईश्वर कभी मर नहीं सकता।

कबीर सामन्य जीवन जीते हुए भी लोकजन के बीच अपनी एक अलग पहचान स्थापित किया। भारत में 14वीं शताब्दी में जहाँ एक तरफ व्यवस्था परिवर्तन हेतु सवाल खड़ा करना पूरी तरह से प्रतिबन्धित था। उस स्थिति में संत कबीर ने सवाल खड़ा किया। 14वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाज सुधार आंदोलनों का शंखनाद कबीर द्वारा ही किया गया। कबीर ने अपनी जाति एवं व्यवसाय को कभी भी हीन भावना की दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उन्होंने अपनी जाति एवं व्यवसाय को अपना ब्रैन्ड बना लिया। उसी तरह के ब्रैन्ड को आज दलित समाज भी धारण कर रहा है। कबीर की वैचारिकी आध्यात्मिकता एवं कर्मकाण्डों की बजाय जीवन के व्यावहारिक पहलुओं पर सरपट दौड़ती है। कबीर ने अपना पूरा जीवन एक सच्चे क्रिया समाजविज्ञानी के रूप में व्यतीत किया। कबीर का समाजशास्त्र लोकजन के बीच श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित करता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कबीर का समाजशास्त्र मानव जीवन की समस्त घटनाओं को अन्तर्निहित करता है। लोकोक्तियों, कहावतों एवं पदों के माध्यम से जिस समाजशास्त्र को देखने–समझने की बात हम करते हैं उसका पूरा संदर्श कबीर की वैचारिकी प्रस्तुत करती है। कबीर ने सिद्धान्त की बजाय क्रिया पक्ष को अपने जीवन में धारण किया। यह पक्ष आज समाजशास्त्र की अध्ययन की प्रमुख विषय–वस्तु भी है। कबीर का समाजशास्त्र कल भी मानवता का पाठ पढ़ाता था और आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी मानवता का पाठ पढ़ा रहा है।

पठनीय एवं संदर्भित ग्रंथ

चतुर्वेदी, परशुराम (2014) : उत्तर भारत की संत परंपरा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

द्ववेदी, हजारी प्रसाद (2018) : कबीर–कबीर के व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचारों की आलोचना, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

सूरती, उर्वशी (2015) : कबीर जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

संत आचार्य विवेकदास (2011) : कबीर की सीख, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी

आचार्य, संत विवेकदास (2013) : कबीर जीवन कथा, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी

कल्कि, कृष्ण एवं मुरारी, राम (सम्पादक) : सिद्धपीठ, कबीरचौरा (कबीर जयन्ती महोत्सव–2007 के अवसर पर प्रकाशित), कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी

जानसन, हैरी एम. (2004) : समाजशास्त्र एक विधिवत विवेचन (अनुवादक–योगेश अटल) कल्याणी पब्लिशसर्स, नई दिल्ली

दुर्खीम, इमाइल (1954) : दि एलीमेंटरि फार्म्स आफ रिलिजियस लाइफ, दि मैकमिलन, न्यूयार्क

धर्मवीर, (2000) : कबीर–नई सदी में : कबीर : बाज भी कपोत भी, पपीहा भी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

Tripathi, B.D. (1978): Sadhus of India: The Sociological View, Popular Prakashan, Bombay